# कोविड के बाद स्कूलों में सामाजिक मेलजोल और संवाद

सारिया अली

स्कूल मेरे लिए सहज सम्बन्धों को विकसित करने के लिए सबसे अधिक आश्वस्त करने वाला सक्रिय स्थान था। यह वह जगह थी जहाँ किसी सख़्त शिक्षक को चकमा देते हुए, एक साथ प्रोजेक्ट वर्क करते हुए, दोपहर का खाना खाते हुए और अपने विचित्र, कल्पनाशील विचारों को साझा करते हुए दोस्तियाँ बनती हैं। बहुत-से लोगों के लिए ये दोस्तियाँ जीवन भर बनी रहती हैं। लेकिन *कोविड-19* महामारी के कारण स्कूल जाने वाले बच्चे आज अप्रत्याशित अलगाव का अनुभव कर रहे हैं। यह लेख इस एकाकी समय, इसके द्वारा पैदा किए गए फ़ासलों को ध्यान में रखने के साथ ही इस बात को भी मद्देनज़र रखते हुए लिखा गया है कि कोविड के बाद या जब भी स्कूल फिर से खुलेंगे तो इतने लम्बे अन्तराल के बाद संवाद और सीखने के एक सक्रिय स्थान के रूप में स्कूलों की क्या अहमियत होगी।

एक स्कूली ढाँचे के साथ मेरा क़रीबी जुड़ाव, मेरी स्कूली शिक्षा के पाँच साल बाद, राजस्थान के बाड़मेर में एक छोटे-से सरकारी प्राथमिक स्कूल में हुआ। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के एसोसिएट प्रोग्राम के तहत अनिवार्य स्कूली अभ्यास के हिस्से के रूप में मैंने लगभग चार महीने तक स्कूल में बच्चों की एक सीमित संख्या के साथ काम किया। इस काम के ज़रिए, मैं एक स्कूल में काम करने वाले सामाजिक आयामों की एक पुख़्ता समझ विकसित कर पाई। बाड़मेर ऐसा ज़िला है जहाँ आपकी जातीय पहचान बहुत अहमियत रखती है यानी लोग जाति को लेकर काफ़ी सचेत रहते हैं और स्थानीय लोगों की पूरी कोशिश रहती है कि आपसे पहली मुलाक़ात में ही वे आपकी जाति जान लें।

इसके साथ यह सच्चाई भी है कि बाड़मेर एक छितरी आबादी वाला ज़िला है, ख़ासतौर पर इसके ग्रामीण इलाकों में और लोग ढाणी नामक छोटे समूहों में रहते हैं, जो एक-दूसरे से काफ़ी दूरी पर स्थित होती हैं। जाति और ढाणी जैसे ढाँचे अस्तित्व में कैसे आए यह तब और स्पष्ट हो जाता है जब कोई यहाँ के सामाजिक आयामों को और क़रीब से देखता है — हर ढाणी में सिर्फ़ एक ही जाति के लोग रहते हैं। ऐसे सामाजिक ढाँचे में, सामुदायिक गौरव की भावना और समुदाय में फल-फूल रहे विचारों व संस्कृति को बच्चे कट्टरपन से ग्रहण करते हैं। वे जो भी देखते या सुनते हैं, वही आख़िरकार समाज के बारे में सीखते हैं।

स्कूल सामुदायिक ढाँचे के नियंत्रण को तोड़ने वाला वह पहला स्थान है जहाँ एक बच्चा ढाणी के बाहर क़दम रखता है। स्कूल एक ऐसा मंच बन जाता है जो बच्चों को वृहत समाज में मौजूद विविधताओं से परिचित होने और ऐसी जगह में ख़ुद को कैसे बनाए रखना है, इसे सीखने का मौक़ा देता है। साथ ही, स्कूल वह जगह भी हैं जहाँ एक बच्चे का व्यवहार दूसरी जातियों या धर्मों के लोगों के बारे में सीखी रूढ़ियों को दर्शाता है। इसलिए, बच्चों के बीच किसी भी तरह के अलगाववाद/ भेदभाव को ख़त्म करने के लिए स्कूल को सचेत रूप से दख़ल देना ही होगा।

**कोविड के बाद यह कैसा रहने वाला है?**

एक स्कूल के अन्दर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रथाओं को तोड़ना मुश्किल काम तो है पर अनिवार्य है। उदाहरण के लिए, मध्याह्न भोजन के लिए उच्च जाति के बच्चों द्वारा अपने ख़ुद के बर्तन लाने की प्रथा को तभी तोड़ा जा सकता है जब स्कूल इस पर प्रतिबन्ध लगाता है और इस तरह से बच्चों को नई सीख मिलती है। बदक़िस्मती से एक साल से भी ज़्यादा लम्बे अन्तराल ने बच्चों को न सिर्फ़ उनके घरों के अन्दर बन्द किया है, बल्कि घरों के भीतर हुई हर बातचीत को उन्होंने आत्मसात भी किया। अफ़सोसजनक बात यह है कि इस महामारी की संक्रामक प्रकृति ने कई रूढ़िवादी तरीक़ों से कुछ समुदायों के ख़िलाफ़ लोगों के नज़रियों में भी घुसपैठ की है। ऐसी स्थिति में जब नियमित स्कूल शुरू होंगे, तो बच्चों की आपस में होने वाली बातचीत के दौरान उनका बर्ताव कैसा रहेगा उसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। इतने लम्बे समय के बाद अपने दोस्तों से मिलने के उत्साह को देखते हुए और खेल, लंच व एक-दूसरे की कॉपियों से नक़ल करते हुए एक साथ स्कूल की यादों का आनन्द लेने के सन्दर्भ में यह सकारात्मक हो सकता है। दूसरी ओर, बच्चे जिस डर के साथ स्कूल आएँगे उस नज़रिए से देखें तो यह नकारात्मक भी हो सकता है। यह डर वायरस की चपेट में आने या किसी ख़ास समुदाय के लोगों से सामाजिक दूरी बनाए रखने के बारे में हो सकता है।

बाद वाली आशंका, सामुदायिक कक्षाओं के दौरान हुए मेरे फ़ील्ड अनुभवों में से आई है, जहाँ एक बच्ची (जिसे कक्षा के अन्दर मास्क लगाने के लिए कई बार याद दिलाने की ज़रूरत पड़ती है) ने एक ख़ास समुदाय के व्यक्ति के गुज़रने पर अपने सहपाठियों को मास्क पहनने के लिए चेताया था।

मैंने इस बच्ची के पूर्वाग्रह को समझने के लिए उसके साथ लम्बी चर्चा की। उसने बताया कि हमारे देश में कोरोनावायरस के फैलने के लिए एक ख़ास समुदाय ज़िम्मेदार था और हमें उनसे सावधान रहना चाहिए। उसने अपने माता-पिता को इस बारे में चर्चा करते सुना था। यह उन समस्याओं में से एक है जो कोविड के बाद पैदा हो सकती हैं। यह सिर्फ़ बीमारी फैलने के डर से एक समुदाय से दूरी बनाए रखने तक ही सीमित नहीं होने वाला है बल्कि समुदायों के भीतर एक जाति या धर्म के ख़िलाफ़ भेदभावपूर्ण व्यवहार को और भी गहरा कर सकता है।

इस मुद्दे का एक उजला पहलू भी है। जहाँ प्राइमरी स्कूलों में बच्चों में जाति और धर्म की उतनी विविधता देखने को नहीं मिलती, जितनी मिडिल और हाई स्कूलों में मिलती है। अब महामारी के दौरान, क्लास प्रमोशन (कक्षोन्नति) करने से बच्चे दो क्लास आगे हो गए हैं यानी एक बच्चा जो चौथी कक्षा में था, अब छठी कक्षा में होगा। इसका मतलब है कि जब भी स्कूल फिर से शुरू होंगे, यह बच्चा ऊँचे दर्जे में और एक अधिक विविध स्कूल में पढ़ेगा। ऐसे परिदृश्य में, स्कूल की तैयारी पर सक्रिय तरीक़े से विचार करने की ज़रूरत है। सबसे पहले तो, स्कूल के लिए ज़िम्मेदार हितधारकों को एक संवेदनशील, धैर्यवान समझ के साथ शुरुआत करनी होगी कि बच्चे अप्रत्याशित तरीक़े से व्यवहार कर सकते हैं, ख़ासतौर पर छोटे बच्चे, क्योंकि वे लम्बे समय से डर से भरे हुए और भ्रमित करने वाले दौर में रह रहे हैं।

दूसरा, कुछ बच्चे ज़बानी तौर पर या अपने व्यवहार में किसी भी प्रकार का सामाजिक भेदभावपूर्ण रवैया दिखा सकते हैं। ऐसे में स्कूल को सक्रिय रूप से दख़ल करके यह सुनिश्चित करना होगा कि अनिवार्य शारीरिक दूरी वास्तविक सामाजिक दूरी में न बदल जाए। ऐसे मामलों में दख़ल करने का मतलब डाँटने-फटकारने जैसा कुछ नहीं हो सकता, बल्कि नैतिक रूप से बाध्य संवाद या फिर गतिविधियों, कहानियों, नाटक और चर्चाओं से निकाले गए निष्कर्ष हो सकते हैं जो बच्चों में एक नया नज़रिया और सीख लाएँगे।

आख़िर में, यह ज़रूरी है कि समुदाय के सदस्यों के साथ स्कूल के मेलजोल, संवाद को बढ़ाया जाए। यह संवाद इस लक्ष्य के साथ किया जाना चाहिए कि उन्होंने महामारी के दौरान अगर किसी अन्य समुदाय या प्रथा के ख़िलाफ़ किसी भी प्रकार के अवैज्ञानिक मिथक विकसित कर लिए हों तो उन्हें तोड़ा जाए। ये काम चुनौतीपूर्ण हो सकते हैं क्योंकि लगभग दो सालों के वक़्त में विकसित हुई सभी रूढ़ियों को तोड़ना आसान नहीं होगा, लेकिन आने वाली पीढ़ियों में जाति व धार्मिक भेदभाव अपनी पैठ न जमा पाएँ, इसे सुनिश्चित करने में स्कूल एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

यहाँ उजागर की गई समस्या और उसका समाधान एक स्थितिपरक चिन्ता की तरह लग सकते हैं, लेकिन इसी तरह से किसी के ख़िलाफ़ और किसी के पक्ष में अफ़साने गढ़े जाते हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी पहुँचाए जाते हैं। किसी भी प्रकार की नफ़रत फैलाने वाले और ग़लतफ़हमी पैदा करने वाले विचारों से निपटा ही जाना चाहिए। ख़ासतौर से उन बच्चों के लिए जो कि महामारी फैलने के बाद पहले सार्वजनिक स्थान के रूप में स्कूल में दाख़िल होंगे। यह वह जगह है जहाँ दो साल में हासिल हुईं उनकी सभी सीखें व्यवहारिक रूप ले सकती हैं, इसलिए उनके उचित मार्गदर्शन की ज़िम्मेदारी शिक्षकों पर है। दरअसल, इस तरह के सामाजिक मेलजोल का इस्तेमाल किसी के भी प्रति बच्चों में आई ग़लतफ़हमियों को दूर करने के लिए एक वरदान की तरह किया जा सकता है।

अन्त में, स्कूलों के फिर से खोले जाने को बच्चों और समुदायों, दोनों को सही सन्देश देकर सामाजिक रूप से सामंजस्यपूर्ण व्यवहारों को बहाल करने के एक आशावादी अवसर के रूप में देखा जा सकता है।



**सारिया अली** अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बाड़मेर, राजस्थान में एसोसिएट हैं। उन्होंने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु से एमए (विकास) और दिल्ली विश्वविद्यालय के मिराण्डा हाउस कॉलेज से दर्शनशास्त्र में बीए की उपाधि प्राप्त की है। वे सीखने और शिक्षा को साक्षरता के परे देखने के विचार में बड़े जोश के साथ यक़ीन रखती हैं। उनके अनुसार यह सीखना या शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बच्चों को ऐसा व्यक्ति बनाए जो ख़ुद अपनी सोच बना सकें। उनसे sariya.ali@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** सीमा